सत्यांश

स्वतंत्रता की आवश्यकता

स्वतंत्रता मनुष्य ही नहीं, प्राणिमात्र की नैसर्गिक प्रकृति है। फलतः जब भी उस पर किसी प्रकार का बंधन आरोपित किया जाता है, तो जीव छटपटाने लगता है, लेकिन यह छटपटाहट प्रायः बाहरी बंधनों और लादे गए बोझों प्रति ही होती है। इनके अतिरिक्त बहुत-सारी बंदिशें हैं, जिन्हें लोग स्वयं अपने लिए निर्मित कर लेते हैं, उन निर्मितियों में रहना अच्छा लगता है और जब कभी ऐसी निर्मितयाँ कहीं से भी टूटती हैं तो उन्हें बचाने का भरसक प्रयास किया जाता है, टूटने पर तड़प होती है। सवाल है कि वे कौन सी चीजें हैं, जिनके बंधन में रहना अच्छा लगता है? इस प्रकार देखने पर वे बहुत-सारे भाव इसके अन्तर्गत आते हैं जिन्हें मानवीय और स्वाभाविक कहा जाता है। इसके अन्तर्गत लोभ, मोह, माया, ममता, काम, मद, नशा, पदलिप्सा, सुख-सम्मान की भूख आदि तो बंधन-कारक हैं ही, इससे ऊपर प्रेम, राग, ज्ञान, धर्म, संस्कृति, संस्कार आदि भी हमें किसी-न-किसी रूप में बांधते हैं। इतना ही नहीं, बुरी आदतों के तो लोग गुलाम होते ही हैं, अच्छे आचार के भी गुलाम होते हैं। कई बार एक से अधिक अच्छे गुण एक-दूसरे के पूरक बनने के स्थान पर परस्पर विरोधी साबित होते हैं। एक की अधिकता दूसरे की चमक पर कालिमा जैसी लगती है। यथा स्वदेश-प्रेम की प्रबल भावना विश्वबंधुत्व और अन्तर्राष्ट्रीयता के प्रतिकूल दिखती है। इसी प्रकार सार्वभौमिक-सार्वकालिक भावनाओं के भीतर क्षेत्रीय समसमायिकता तिरोहित दिखती है।

व्यक्ति सबसे अधिक गुलाम अपने द्वारा, अपने लिए बनायी सुख-सुविधाओं के होते हैं। सुख-सुविधाएँ और साधन उपभोग-उपयोग के लिए अपने दायरे से बाहर जाकर भी एकत्र करते हैं, उसके गुलाम हो जाते हैं, उनके बिना रहना खटकता है। इन सुख-सुविधाओं, आकांक्षाओं-महत्त्वाकांक्षाओं के पीछे इतने दीवाने होते हैं कि उन्हें पाने के लिए अपने व्यक्तित्व को विकृत ही नहीं, 'आत्महत्या' तक कर लेते हैं। स्वतंत्रता का संबंध मनुष्य की चेतना से है और चेतना का उत्स-स्थल अन्तर्जगत है। असली स्वतंत्रता मनुष्य के अंतर्मन की चेतना की होती है। इसलिए स्वतंत्रता के लिए पहला प्रयास चेतना के स्तर पर ही आवश्यक है। इसके अभाव में अन्य स्तरों की स्वतंत्रता एक तरह की परतंत्रता ही सिद्ध होती है। चेतना के स्तर पर अपने भावों, विचारों, विकारों की भीतरी जकड़ से मुक्त होकर ही आदमी बाह्य परिस्थितियों के विघ्न, बाधाओं से निजात पा सकता है। यदि वह बाहरी बाधाओं को तोड़ने में असफल भी हो जाए, तब भी अंदर के मुक्त चेतना उसे आनंदित करती रहेगी। महर्षि वासिष्ठ ने बंधन मुक्ति का उपाय बताया है कि जो बुद्धि से मुक्त है, वही वास्तव में मुक्त है, चाहे वह कर्मेन्द्रिय से बँधा ही क्यों न हो और जो बुद्धि से बँधा है, वह पराधीन है, बँधनग्रस्त है चाहे वह शरीर से मुक्त ही क्यों न हो। ऐसी बुद्धि जो किसी भी प्रकार के दुराग्रह, पुरातन-नवीन, रूढ़ि-अंधविश्वास, अंधानुकरण, पक्षधरता, संकीर्णता आदि को जन्म देती है, वह बंधन वाली बुद्धि है, साथ ही जिस बुद्धि द्वारा पद, पैसे, सम्मान के लोभ का उपाय किया जाए, मोह-ममता और कामेच्छा की पूर्ति होती हो, वह बुद्धि बंधित है। स्थिर बुद्धि वह है जो वीत-राग, लाभ-हानि, जय-पराजय में सम रहे। भगवद्गीता में स्थिर बुद्धि व्यक्ति का लक्षण बताया गया है कि जिस काल में यह पुरुष मन में स्थित संपूर्ण कामनाओं को भलीभाँति त्याग देता है और आत्मा से आत्मा में ही संतुष्ट रहता है, उस काल में वह स्थित प्रज्ञ कहा जाता है। दुखों की प्राप्ति होने पर जिसके मन में उद्वेग नहीं होता, सुखों की प्राप्ति में जो सर्वथा निस्पृह है तथा जिसके राग, भय और क्रोध नष्ट हो गए हैं, ऐसा मुनि स्थिर बुद्धि कहा जाता है। जो पुरुष सर्वत्र स्नेहरहित हुआ उस-उस शुभ-अशुभ वस्तु को प्राप्त होकर न प्रसन्न होता है और न द्वेष करता है, उसकी बुद्धि स्थिर है।

संस्कार के अनुसार, चाहे सकारात्मक हो या नकारात्मक, हम कर्म करते हैं और कर्मों के बारे में 'विष्णु पुराण' में कहा गया है कि कर्म है ही बंधन के लिए, फिर भी निष्काम-निर्लिप्त कर्म बहुत हद तक बंधन से परे होते हैं। ऐसे कर्मों को करने या न करने से, फल मिलने या न मिलने से कोई खास फर्क नहीं पड़ता। इसीलिए मनुस्मृति में कहा गया है। जो-जो कार्य पराधीन हो, उस-उस कार्य को यत्न करके छोड़ देना चाहिए और जो-जो कर्म अपने अधीन हो, उस-उस का यत्नपूर्वक अनुष्ठान करना चाहिए। बुद्धिशील पुरुष अपने मार्ग का निर्माण स्वयं करता है। वह लोभ, अहंकार व व्यसन में पड़कर नकल-अनुकरण नहीं करता, किसी कर्म में जबरन प्रवृत्त नहीं होता। बौद्ध जातक में इसी भाव को दूसरे रूप में व्यक्त किया गया है कि ग्राम या वन में, जहाँ आदमी को सुख प्राप्त हो, वही बुद्धिमान आदमी की जन्मभूमि है, वही पलने की जगह है। चेतना के साथ जहाँ रहकर जी सकता हो, वहीं जाए, घर में रहकर चेतनाशून्य मरनेवाला न बने। यहाँ जिस सुख की बात की जा रही है, वह चेतन आनंद है जो लोभ-मोह से परे है। जहाँ चेतना का मुक्त विकास हो, वहीं रहना चाहिए।

रुसो ने कहा है कि आदमी स्वतंत्रा जन्म लेता है; परंतु हर समय अपने को बंधनों में पाता है। यह बंधन जाति, संप्रदाय, क्षेत्र, रंग जैसे अनायास प्राप्त हुए तो होते हैं, जिन अच्छाइयों के सहारे यश, सम्मान प्राप्त करते हैं, वे भी किसी-न-किसी रूप में पिंजड़बद्ध कर लेती हैं। नीति तो यहाँ तक कहती है कि किसी अच्छे-से-अच्छे विचार का भी मनुष्य को पूर्ण गुलाम नहीं बनना चाहिए। यह उसके विरोधियों के लिए अस्त्र का काम करता है। इतिहास में ऐसे उदाहरण भरे पड़े हैं। जहाँ आदर्श विचारों में दृढ़ता से चलने वालों का 'अंत' भी उन्हीं विचारों के कारण हुआ। महाभारत काल में भीष्म ने स्त्री पर शस्त्र न उठाने का संकल्प रखा था, फलतः अर्द्ध पुरुष शिखण्डी को युद्ध क्षेत्र में सामने खड़ा करके उन्हें मृत्यु-शैय्या पर लिटा दिया गया। कर्ण दानवीर था, ईशाराधना के समय उससे कोई कुछ भी मांग लेता तो वह अपनी दान निष्ठा के कारण देने के लिए प्रतिबद्ध था, फलतः उसका कवच-कुंडल माँग लिया गया जो उसकी मृत्यु का कारण बना। युधिष्ठिर ने 'क्षत्रिय धर्म' का पालन करते हुए जुआ खेलने से पहरेज नहीं किया, फलतः उन्हें सब कुछ हारना पड़ा। अच्छा व्रत व संकल्प सब दूसरों के लिए छल-कपट का विषय हो सकता है; परंतु नीति चाहे जो कहती हो, संकल्प-व्रती व्यक्ति मृत्यु तक से कभी भयभीत नहीं होता। वह अपने व्रत का पालन हर हालत में करता है। सच तो यह है कि वह कष्टों को भी सहर्ष गले लगता है, सुख-सुविधाओं को त्यागता है।

आसक्ति व कामेच्छा हमारी चेतना की गुलामी का मूल कारण है। इसका प्रभाव यह होता है कि जिसके प्रति हमारी आसक्ति होती है उसके प्रति लोग अंधता के शिकार हो जाते हैं और उसके पीछे अपनी चेतना को नष्ट करने लगते हैं। ऐसे में चेतना की सीमा सिकुड़ने लगती है और कुछ खास माँग और पूर्ति की संतुष्टि तक सिमट कर रह जाती है। यदि पूर्ण चेतना के साथ उसका उपभोग किया जाए तो बात अलग है, लेकिन सारी चेतना की उत्पत्ति ही कुछ विशेष-विशेष बिन्दु से कुछ विशेष बिन्दु तक हो तो वह चेतना नहीं, अपितु लोभ व लालच को फलीभूत करने वाली भ्रष्ट बुद्धि मात्र है। आसक्ति में चेतना नहीं होती, भावाद्रेक की अतिशयता जरूर होती है, वहाँ परतंत्र बनना ही सुखकर लगता है। लोग जिस परिवेश और जिस स्थिति में रहते हैं, उसी के गुलाम हो जाते हैं। अच्छी स्थिति के ही दास हों, तो फिर भी चलेगा। बुरी चीजों जैसे नशा, व्यसन, मनोरंजन, सेक्स का भूत लोगों के ऊपर सवार होता है तो उनके लिए कुछ भी करने के लिए तैयार हो जाते हैं, उसके बिना रहा नहीं जाता। अतः इनसे दूर रहना ही वास्तविक स्वतंत्रता की निशानी है।